हिंदी साहित्य का इतिहास

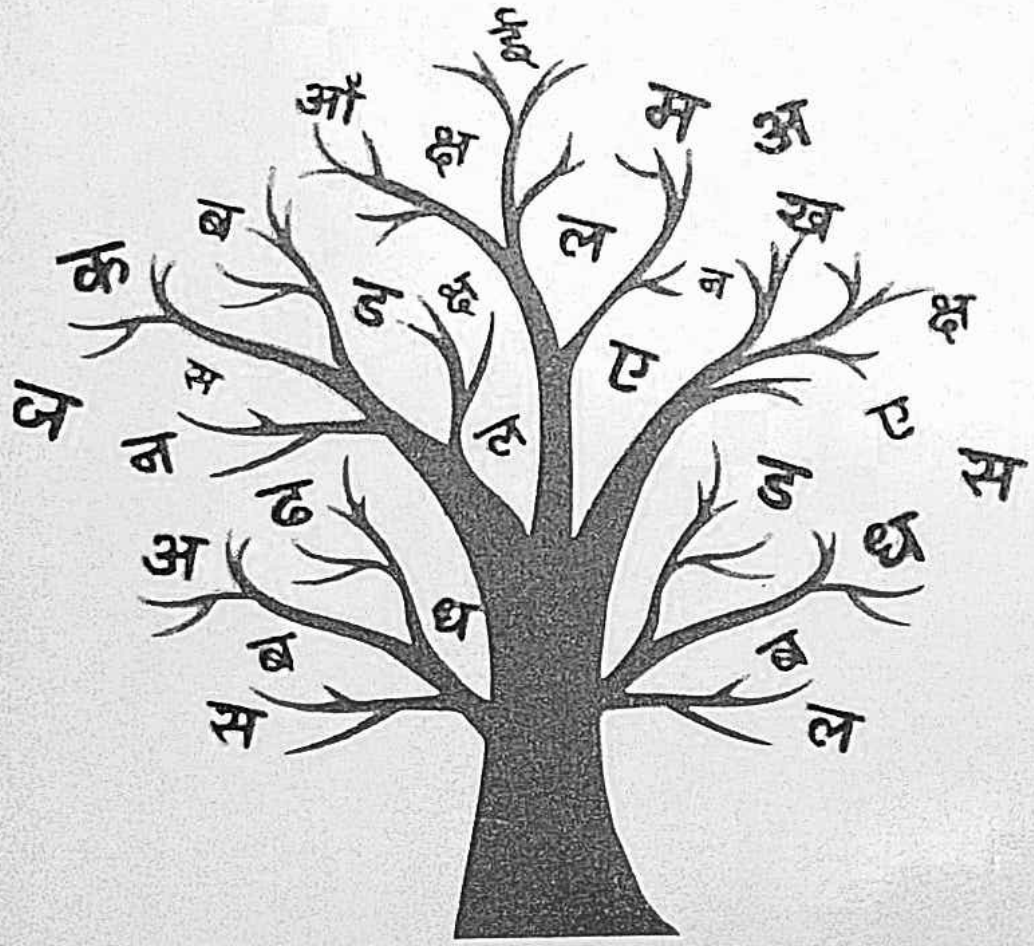

संपादक
प्रसादराव जामि

हिंदी साहित्य का इतिहास

संपादक
प्रसादराव जामि

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स
वी-508, गली नं.17, विजय पार्क,
दिल्ली-110053
मो. 08527460252, 09990236819
ईमेल: jtspublications@gmail.com

27. सामाजिक निर्माण के साहित्य की भूमिका 224
डॉ. दीपक विनायकराव पवार
28. हिंदी साहित्य की प्रासंगिकता और महत्व 231
प्रो. डॉ.शेख शहेनाज अहेमद
29. हिन्दी साहित्य में आज का साहित्य का स्वरूप" 236
श्रीमती अरुणा अग्रवाल
30. हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श 239
आदित्य
31. कबीर के विचार मर्म को अभिव्यक्त करती उलटवाँसियाँ 245
डॉ. अमरेंदर संदिनेनि
32. हिंदी साहित्य के अंतर्गत भक्तिकाल स्वर्णकाल 252
चौहान शुभांगी मगनसिंह
33. हिंदी सांहित्य में भक्ति आंदोलन 257
डॉ. मुमताज इमाम पठान
34. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ 262
राकेश विक्रम कश्यप
35. भारतेंदु की अनमोल उक्तियां 271
निरुपमा महारणा
36. आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग का योगदान और स्वरूप 276
डॉ. सीताराम आठिया
37. हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल 287
आशा जाकड़ 'आस'
38. मातृभाषा हिन्दी की महत्ता 296
डॉ. सुरेश लाल श्रीवास्तव
39. हिंदी साहित्य में श्रीरामधारीसिंह दिनकर का योगदान एवं चिंतन स्वरूप 299

28

हिंदी साहित्य की प्रासंगिकता और महत्व

प्रो.डॉ.शेख शहेनाज अहेमद
हिंदी विभाग प्रमुख
हु.जयवंतराव पाटील महाविद्यालय
हिमायतनगर - 431802.

साहित्य में सहित का भाव होता है। इन रचनाओं को जो स-हित भाव से रमणीय शैली में लिखी जाती है, साहित्य में सम्मिलित की जाती है। साहित्य मूल रूप में सत्यम, शिवम और सुंदरम को समाहित करता है। किसी भी देश या भाषा का साहित्य कई कारणों से प्रासंगिक तथा महत्वपूर्ण होता है। हिंदी साहित्य ने प्रायः इन सभी दृष्टियों से प्रासंगिक का निर्वाह किया है।

साहित्य का सबसे बड़ा योगदान यह होता है कि वह पाठक को संवेदनशील बनाता है। संवेदनशीलता भावुकता का पर्याय नहीं है। संवेदनशीलता का अर्थ है उसके प्रति भावात्मक संबंध महसूस करना जो पीड़ा में है। साहित्य की शक्ति इसमें है कि वह पाठक को भी इस समस्या या पीड़ा के प्रति संवेदनशील बना देता है। उदाहरण के लिए निराला की भिक्षुक कविता गरीब के प्रति संवेदनशीलता पैदा करती है।

"वह आता,
दो टुक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता
पेट-पीठ दोनों मिलकर है एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को
भूख मिटाने को"1

साहित्य के संदर्भ में प्रासंगिकता का सवाल बार-बार उठाया जाता हैं और प्रायः इस तरह कि वही साहित्य श्रेष्ठ होगा, जो प्रासंगिक होगा। यानी, प्रासंगिकता वह कसौटी है, जिसके आधार पर किसी रचना या रचनाकार को कमतर या महत्वपूर्ण साबित किया जाता है। पूर्ववर्ती रचनाकारों के मुल्यांकन में तो इसका खूब उपयोग किया जाता है। यह साबित करने के लिए जी-जान लगा दिया जाता है। कि अमुक रचनाकार आज भी उतना ही

प्रासंगिक है और इसलिए वह महत्वपूर्ण है। जबकि अभिव्यक्ति के दूसरे रूपों-ललित कला मूर्तिकला, नृत्य संगीत आदि में प्रासंगिक कोई कसौटी नही है। प्रश्न यह है कि प्रासंगिकता कोई साहित्यिक कसौटी है या साहित्य का स्वभाव ? प्रेमचंद ने कहा था कि साहित्य स्वभावतः प्रगतीशील होता है, क्या हम उसी तरह नही कह सकते साहित्य स्वभावतः प्रासंगिक होता है। यह बात बहुत हद तक ठीक है। जैसे प्रगतिशीलता साहित्य का अलग से कोई मानदंड नही हो सकती वैसे ही प्रासंगिकता भी। दरअसल, स्थायीत्व एक प्रमुख भेदक लक्षण है, जिसके द्वारा उस विज्ञान या समाज विज्ञान से अलगाया जाता है। विज्ञान के क्षेत्र में एक विषय पर नए तथ्यों के आलोक में दूसरी पुस्तक आ जाने पर पहली का कोई महत्व नहीं रह जाता। पर, साहित्य में ऐसा नही होता।

वाल्मीकि, भवभूति, तुलसीदास, केशव, मैथिलीशरण गुप्त आदि द्वारा रामकथा के आधार बनाकर लिखे गए सभी काव्यों का महत्व कायम है। इसी तरह 'राम की शक्ति पूजा' का अपना महत्व है तो संशय की एक रात का अपना। एक ही विषय पर बीसों रचनाएँ लिखी जा सकती है और सभी महत्वपूर्ण हो सकती है। रचना के महत्वपूर्ण होने में विषय से अधिक योगदान रचनाकार का होता है। साहित्य की उतकृष्टता विषय सापेक्ष नहीं, बल्कि विषय निरपेक्ष होती है और होनी भी चाहिए। अगर विषय ही साहित्यिक उतकृष्टता का निर्णायक तत्व होता तो फिर सारी श्रेष्ठ रचनाएँ एक ही विषय पर होनी चाहिए थी। जाहिर है, ऐसा नही है।

साहित्यिक से लेकर अकादमिक गोष्टियों तक में यह सुन कर बहुत कोफ्त होती है कि अमुक रचना इसलिए अच्छी है कि वह किसानों पर है, यह कहानी इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसमें एक स्त्री का संघर्ष है, इस उपन्यास की महत्ता इस बात में है कि यह 'लिव इन' पर लिखा गया है, आदि। ठिक ऐसे ही प्रेमचंद के बारे में कहाँ जाता है कि, वे महान इसलिए है कि, उन्होंने गावों, किसानों की समस्याओं आदि पर लिखा है। नामवर सिंह कहते है कि, ''आंकडे जुटाना पटवारियों का काम है और प्रेमचंद साहित्य के पटवारी नही थे। आलोचक को साहित्य के मर्म को पकड़ना चाहिए।''2 उन्होंने बहुत महत्वपूर्ण बात कही थी। इस बात को रामचंद्र शुक्ल ने अपने आलोचना कर्म में स्पष्ट रूप से कही है। उनके अनुसार, विषय के आधार पर रचना को उत्कृष्ट या निकृष्ट बताने के मूल में प्रासंगिकता ही आलोचकीय मानदंड है। इस मापदंड को व्यापक स्वीकृति मिली, क्योंकि उसने आलोचना का काम एकदम आसान कर दिया। यह एक ऐसा अचूक फार्मूला बन गया, जिससे जटिल से जटिल रचना पर पलक झपकते मूल्य निर्णय दिया जाने लगा। ''समकालीन रचना हो या पूर्ववर्ती, आलोचक सिर्फ इतना देखता है कि उसमें जिन मुद्दों को उठाया गया है उनका हमारे समय की समस्याओं से रिश्ता है या नही। अगर है तो

रचना उत्कृष्ट, नही है तो निकृष्ट।"3 अब रचना के भीतर प्रवेश करने की आवश्यकता ही समाप्त हो गई। आलोचना की यह स्थिति राजनीतिक कार्यकर्ताओं समीक्षकों और आलोचकों के लिए बहुत उर्वर साबित हुई।

पुरातन साहित्यिक कृतियों का अध्ययन करने पर हमें यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि साहित्यकार कितने अधिक तन-मन से समर्पित भाव से तल्लीन रहते थे। व्यक्ति सब कुछ भूलकर संरचना में दत्तचित्त रहता है तभी कालजयी साहित्य की संरचना होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह कथन, ''किसी साहित्य में केवल बाहर की भद्दी नकल उसकी अपनी उन्नति या प्रगति नही कही जा सकती। बाहर से सामग्री आए, खूब आए वह कूड़ा-करकट के रूप में न इकट्ठी की जाए, जिससे हमारे साहित्य के स्वतंत्र और व्यापक विकास में सहायता पहुँचे।"4 कितना सटीक है यह कथन। ये पंक्तियाँ-

"अंधकार है वह देश,
जहाँ आदित्य नही मुर्दा है
वह देश जहाँ साहित्य नही।"5

प्रासंगिकता का सवाल साहित्य और समाज के संबंध का सवाल नही है। यह साहित्य की सामाजिक उपयोगिता का सवाल है। यह एक तरह से साहित्य को समाज और राजनीति के लिए उपयोगी उत्पाद में बदल देने की सुनियोजित परियोजना का हिस्सा है। साहित्य का इससे हीनतर उपयोग और कुछ नहीं हो सकता कि वह राजनीति के लिए उपयोग की वस्तु बन जाए। आजादी के बाद का हिंदी साहित्य का इतिहास इस बात का गवा है कि न जाने कितनी महत्वपूर्ण कृतियों को सिर्फ राजनीतिक रूप से प्रासंगिक न होने के कारण खारिज कर दिया गया। क्या कोई कह सकता है कि मैला आँचल में समाज नही है या वह समाज निरपेक्ष रचना है ? फिर, मार्क्सवादी आलोचना ने उसे खारिज क्यों किया ? इसीलिए इस बात को जोर देकर रेखांकित करने की जरूरत है कि प्रासंगिकता का प्रश्न और कुछ नही, बल्कि पोलिटिकली करेक्टनेस का सवाल है। डॉ. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जी ने अपनी पुस्तक 'विश्व साहित्य' में साहित्य की विशिष्टता एवं उसके महत्व को बहुत ही सुंदर ढंग से व्यक्त किया है। ''मनुष्यों का वह अनवरत प्रयास ही संसार का साहित्य है। साहित्य की सृष्टि तभी हो जाती है, जब बाह्य प्रकृति से साहचर्य स्थापित होने के साथ ही मनुष्यों के हृदय में भिन्न-भिन्न भावनाएँ उत्पन्न होने लगती है। इसमें संदेह नही कि भाषा के विकास में साहित्य की पुष्टि होती है। परंतु साहित्य का जन्म भाषा की उत्पत्ति से मानना पडेगा क्योंकि भावना पहले होती है और उसकी अभिव्यक्ति की चेष्टा उसके पीछे। अतएव यह बलताना कठिन है कि विश्व साहित्य का आरंभ कब हुआ।"6

हाल के वर्षों में विमर्शों ने साहित्य में लगभग वही स्थान प्राप्त कर लिया है, जो पहले विचारधारा को प्राप्त था। पहले प्रासंगिकता का मतलब मार्क्सवादी विचारधारा के लिए प्रासंगिक होना था, अब इसका मतलब विमर्शों के लिए प्रासंगिक होना है। विचारधारा आधारित आलोचना और विमर्श आधारित आलोचना दोनों ने ही प्रासंगिकता को एक मानदंड के रूप में स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट है कि दोनों के लिए साहित्य उनकी परियोजना का उपकरण मात्र है। सन 2006 में नोबल पुरस्कार विजेता 'ओरहन पामुक' ने इतिहास और वर्तमान के बारे में जो बेबाक टिप्पणी की है, उसमें सच्चाई अपनी पूर्णता के साथ परिलक्षित होती है। उनके उपन्यास 'माई नेम इज रेड' और 'स्नो' सहित संसार में विशेष चर्चित रहे। डॉ.पुष्पा अवस्थी ने भी अपने आलोचना ''समय सापेक्ष संघर्षशील जुझारू लेख 'ओरहन पामुक' में साहित्य और समाज की वस्तुस्थिति का सजीवरूप प्रस्तुत करने में सक्षम।

प्रासंगिकता एक दुधारी तलवार है। किसी सामाजिक-राजनीतिक परिवेश विशेष में किसी रचना या रचनाकार को प्रासंगिकता के कारण महत्वपूर्ण मान लिया जाता है तो यह भी खूब संभव है कि वर्षों बाद सामाजिक-राजनीतिक परिवेश बदलने के बाद वह महत्वहीन हो जाए और जो रचनाकार प्रासंगिकता की कसौटी पर खारिज किए गए हों वे बदली परिस्थितियों में महत्वपूर्ण हो जाएँ। एक समय में कोई रचनाकार प्रासंगिकता के कारण महत्वपूर्ण है तो समय बदलते ही वह महत्वहीन हो जाएगा। यही बात रचना पर भी लागू होती है। इसलिए, साहित्य के लिए सामाजिक-राजनीतिक प्रासंगिकता का सवाल गैरजरूरी है।

आधुनिक परिवेश में साहित्यकार और लेखक अपने सामाजिक दायित्व का ठीक ढंग से निर्वाह करने में असमर्थ नजर आ रहे है। लोग स्वार्थ के संकीर्ण दायरे में घंसते हुए सिर्फ अपने फायदे की सोंच से उबर नही पा रहे है। इसलिए बहुत कुछ देखकर सुनकर सिर्फ वही बातें लिखते है, जिनमें उन्हें लाभ की गुंजाइश नजर आती है। साहित्य की प्रासंगिकता बाहर नही बल्कि उसके अंदर निहित है। कोई भी श्रेष्ठ रचना हमारी संवेदना से जुड़ती है। जीवन के गहरे मर्म को पकड़ती है। अंदर के तारों को झंकृत करती है। भीतर ही भीतर ऐसा कुछ घटित होता है कि हमारा उससे एक गहरा आत्मीय रिश्ता बन जाता है। ऐसा साहित्य हमेशा प्रासंगिक रहेगा। और महत्वपूर्ण भी। यह साहित्य की आंतरिक प्रासंगिकता है, जो प्रत्येक अच्छी रचना में होती ही है। अच्छी रचना इस लिहाज से संभवतः प्रासंगिक होती है। अतः साहित्यकारों को अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को सोंच समझ को वर्तमान परिवेश को देखते हुए पूर्ण ईमानदारी के साथ साहित्यिक कृतियों को सरस व रोचक बनाते हुए मानवीय गुणों के साथ समरसता के भाव को भी आत्मसात चाहिए। ऐसी स्थिति में

धैर्य, लगन एवं एकाग्रता से पूर्ण समर्पित भावसे साहित्य रचना की जाएगी तो निश्चित ही आज के साहित्यकार अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में पूर्णतः सफल होंगे।

संदर्भ :-

1) निराला-भिक्षुक कविता संग्रह से
2) डॉ.नामवर सिंह-आलोचना ग्रंथ
3) आ.रामचंद्र शुक्ल-हिंदी साहित्य का इतिहास
4) -वही -वही-
5) पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी-विश्व साहित्य-भूमिका
6) हिंदी साहित्य का इतिहास-आ.नगेंद्र
7) हिंदी साहित्य का काल विभाजन
8) साहित्य की उपयोगिता-त्रिभुवन